विज्ञान का शौक और भारतीय आदिम सामाजिक ततैयों का अध्ययन

राघवेन्द्र गडगकर

यह मेरे लिए खुशकिस्मती की बात है कि मैं विज्ञान को एक शौक के तौर पर अपना सका या यों कहें कि अपने शौक को अपना पेशा बना सका। यहाँ मैं उन हालात का ज़िक्र करूँगा जिनके चलते यह मुमकिन हुआ। मैं अपने काम के तीन उदाहरण दूँगा जो न सिर्फ विज्ञान का विवरण होंगे बल्कि विज्ञान के कामकाज, खासकर भारत में विज्ञान के कामकाज

कीटों में सामाजिक जीवन की उत्पत्ति और विकास को समझने के उद्देश्य के चलते, मेरे अनुसन्धान कैरियर के अधिकतर भाग में प्रचुरता में पाए जाने वाले स्थानीय आदिम सामाजिक ततैयों, रोपालीडिया मार्जिनेटा के जीवन में ताक-झाँक करना शामिल है। ततैया प्रजाति में मेरी रुचि एक शौक के रूप में शुरू हुई पर जल्दी ही मुझे अपनी रुचि को अपने पेशे में बदलने का मौका मिला। यहाँ मैं बताऊँगा कि किस तरह यह बदलाव हुआ, अपने शौक को पूर्णकालिक गतिविधि में बदलने का क्या मतलब है, अपने अनुसन्धान में से कुछ उदाहरणों को वर्णित करूँगा, और खासकर भारत में आधुनिक विज्ञान को करने की प्रक्रिया के बारे में अपने कुछ विचारों के साथ खत्म करूँगा।

पर चिन्तन का धरातल भी तैयार करेंगे। अपने स्नातक दिनों में मैं खूब पढ़ा करता था और अन्धाधुन्ध ढंग से पढ़ा करता था। इसका एक कारण तो यह था कि करने को कुछ और था ही नहीं। जो सब मैंने पढ़ा, उसमें से दो किताबों ने मेरे दिमाग में उथल-पुथल मचा दी। इनमें से एक थी नोबल विजेता जेम्स डी. वॉटसन की *द डबल हेलिक्स*।

विज्ञान की रंगशाला और मैं

यह किताब कई स्तरों पर प्रेरणादायक थी और इसने मुझे सदा के लिए आण्विक जीव विज्ञान की लत लगा दी। इसके बाद मैंने आण्विक जीव विज्ञान से सम्बन्धित हर वह किताब और शोध पत्र पढ़ा जो मेरे हाथ लगा। उन दिनों मामला पूरी तरह केन्द्रक-पूर्व जीवों (प्रोकेरियोट्स) की आण्विक आनुवंशिकी का था, मगर डी.एन.ए. की खोज, इसे आनुवंशिकी का पदार्थ सिद्ध करना, इसकी दोहरी कुण्डली संरचना का खुलासा, कुछ हद तक त्रुटिपूर्ण प्रतिलिपिकरण का सुझाव और फिर इसकी पुष्टि, प्रोटीन संश्लेषण के विभिन्न चरणों की गुत्थी सुलझना, और बैक्टीरिया, बैक्टीरिया-भक्षी व प्लास्मिड्स का अध्ययन, ये सब स्वर्ग की रंगशाला में खेले जा रहे किसी महानाटक के अंक थे।

वॉटसन और क्रिक, लुरिया और डेलब्रुक, मेसलसन और स्टॉल, ओकोआ और कॉर्नबर्ग, निरेनबर्ग और खुराना जैसे 'ईश्वर' इस रंगशाला में विचर रहे थे और लगातार इस नाटक के विभिन्न अंकों की पटकथा लिख रहे थे, इसे निर्देशित कर रहे थे और मंचन कर रहे थे। और नाटक के ये

सर्वथा नवीन और मंत्रमुग्ध करने वाले दृश्य मुझे लगभग रोज़ाना मिल जाते थे - विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों की शक्ल में। मेरा एहसास यह था कि मैं धरती का एक अदना-सा मनुष्य हूँ जो स्वर्ग में चल रहे इस महानाटक को आँखें फाड़-फाड़कर सम्मान के साथ देख रहा है। यह एहसास और भी बलवती इस कारण हो गया क्योंकि इनमें से कोई भी विषय हमारे पाठ्यक्रम का अंग नहीं था और मेरे किसी शिक्षक या सहपाठी की इनमें न तो रुचि थी और न ही वे इन मामलों पर बात करने में सक्षम थे।

अलबत्ता, मैंने आण्विक जीव विज्ञान के अलावा भी बहुत कुछ पढ़ा। दूसरी किताब जिसने मुझ पर स्थाई असर किया, वह थी कॉनरैड लोरेंज़ की *किंग सोलोमन्स रिंग*। जिस समय मैंने यह किताब पढ़ी थी, उस समय तो लोरेंज़ को नोबल पुरस्कार नहीं मिला था, मगर जल्दी ही मिलने वाला था। कॉनरैड लोरेंज़ ने जिस दिलकश व अविस्मरणीय ढंग से जन्तु व्यवहार का विवरण प्रस्तुत किया था, वह स्वर्ग के मंच पर चल रहे उक्त आण्विक नाटक से एकदम उलट था। यह तो इसी लोक की बात थी। चार्ल्स डार्विन, कॉनरैड लोरेंज़, नाइको टिंबरजन, कार्ल फॉन फ्रिश, ओस्कर हाइनरॉथ, डगलस स्पाल्डिंग, जोकोब फॉन उक्सकुल, ईवान पावलोव, डेसमंड मॉरिस, सब-के-सब इसी लोक के प्राणी थे और मैं एक अलग ढंग से इनका मुरीद था - भय से नहीं बल्कि एक हमसफर के तौर पर। कारण यह था कि मुझे लगता था कि ये लोग जो कुछ भी करते थे, वह ऐसा था जिसे आसानी से किया जा सकता है, कम-से-कम सिद्धान्त रूप में।

मैं एक ऐसे माहौल में स्नातक की पढ़ाई कर रहा था जहाँ कोई सुसज्जित प्रयोगशाला पहुँच में नहीं थी और मुझे अपने और आण्विक जीव विज्ञान के बीच एक ऐसी तकनीकी खाई नज़र आती थी जिसे लांघना असम्भव था। लिहाज़ा, यह एक ऐसा नाटक था जो स्वर्ग के मंच पर चलने जैसा लगता था। दूसरी ओर, इथॉलॉजी यानी जन्तुओं के व्यवहार का अध्ययन मेरी क्षमताओं के अन्दर था। मेरे पास कोई कारण नहीं था कि मैं वॉटसन और क्रिक से ईर्ष्या महसूस करूँ कि डी.एन.ए. की संरचना की खोज मैंने नहीं, उन्होंने की - वैसे भी यह काम मैं नहीं कर सकता था। मगर मुझे थोड़ी ईर्ष्या ज़रूर महसूस हुई कि पक्षियों में इम्प्रिंटिंग की खोज मैंने नहीं, कॉनरैड लोरेंज़ ने की; कि मधुमक्खियों के नृत्य की भाषा का खुलासा मैंने नहीं, कार्ल वॉन फ्रिश ने किया; कि नवजात चूज़ों पर छोटे-छोटे हुड्स लगाकर यह दिखाने का काम मैंने नहीं, डगलस स्पाल्डिंग ने किया कि पेकिंग (pecking) व्यवहार नैसर्गिक है; कि ततैयों के घोंसलों के आस-पास चीड़ के शंकुओं के छल्ले लगाकर यह खोज मैंने नहीं, नाइको टिंबरजन ने की कि ततैया अपने घोंसले ढूँढ़ने के लिए लैण्डमार्क्स

का इस्तेमाल करती हैं।

जन्तु व्यवहारः मेरी दिलचस्पी और शौक

जन्तु व्यवहार के क्षेत्र में जो कुछ मेरे हाथ लगता वह पढ़ने के अलावा मैं कीटों और मेंढकों पर, पक्षियों और बन्दरों पर और यहाँ तक कि अपने साथी इन्सानों पर भी छोटे-मोटे अवलोकन करने लगा। आण्विक जीव विज्ञान के समान ही, जन्तु व्यवहार का अध्ययन भी मेरे अधिकांश शिक्षकों और सहपाठियों की दिलचस्पी और काबिलियत से बाहर था। मुझे तो लगता है कि यह मेरे बौद्धिक विकास में एक प्रमुख कारक रहा।

बैंगलोर विश्वविद्यालय, जिसे उस समय सेंट्रल कॉलेज कहते थे, से प्राणी विज्ञान में स्नातक व स्नातकोत्तर उपाधि से लैस होकर मैंने इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स में पीएच.डी. कार्यक्रम के लिए आवेदन किया। उस समय यह भारत में आधुनिक शोध कार्य के लिए सबसे उम्दा जगह थी और मेरे घर से मात्र एक किलोमीटर की दूरी पर थी। यहाँ जन्तु व्यवहार पर कोई पीएच.डी. कार्यक्रम नहीं था मगर हाल ही में एक पीएच.डी. कार्यक्रम शुरू हुआ था जिसे अन्तर्विषयी (इंटर-डिसिप्लिनरी) आण्विक जीव विज्ञान कहते थे। मुझे बताया गया कि जैव रसायन, सूक्ष्मजीव विज्ञान और कोशिका जीव विज्ञान, जैव-भौतिकी, तथा कार्बनिक रसायन शास्त्र के कुछ प्राध्यापकों ने मिलकर आण्विक जीव विज्ञान का अन्तर्विभागीय कार्यक्रम शुरू किया है। उस वर्ष इस कार्यक्रम में मात्र एक पोज़ीशन थी और जब मुझसे इसकी पेशकश की गई तो मैंने इसे कसकर थाम लिया। और हाँ, मैं तत्काल 'स्वर्ग' में पहुँच गया।

स्वर्ग की रंगशाला के दर्शक के रूप में लायसोजेनिक बैक्टीरियाभक्षी लेम्डा मेरा पसन्दीदा नाटक रहा था और मैंने काफी उत्साह से उसी प्रकार के लायसोजेनिक मायकोबैक्टीरियाभक्षी, I-3, पर काम करने का फैसला किया। इस मायकोबैक्टीरियाभक्षी को कुछ साल पहले इसी प्रयोगशाला में पृथक किया गया था। दरअसल, मैं उस समय सूक्ष्मजीव विज्ञान व औषधि विज्ञान प्रयोगशाला में आया भी था ताकि इस मायकोबैक्टीरियाभक्षी के खोजकर्ता डॉ. सुन्दर राज से हाथ मिला सकूँ। हालाँकि, मैंने उतने नफीस प्रयोग तो नहीं किए जितने स्वर्ग में किए जा रहे थे मगर अगले पाँच साल मैं स्वर्ग में ही रहा। उत्साह से भरे वे साल, पहले से कहीं ज़्यादा शोध-साहित्य तक पहुँच, प्रयोगशाला में अपनी साथी व सहकर्मी रसिका हर्षे के साथ गरमागर्म बहसें, ये सब स्थाई रूप से मेरे दिमाग पर अंकित हैं। मगर सौभाग्य की बात है कि मैंने जन्तु व्यवहार में अपनी दिलचस्पी को तथा अन्धाधुन्ध पढ़ने की अपनी आदत को नहीं छोड़ा। पढ़ने के अलावा, अब मैं काफी संजीदगी से एक शौक के तौर पर जन्तु व्यवहार का प्रकाशन-स्तर का

शोध भी करने लगा था। यह एक विचित्र संयोग का ही परिणाम था।

मिल गया अध्ययन का विषय

सूक्ष्मजीव विज्ञान व औषधि विज्ञान में पहले दिन जो डेस्क मुझे दी गई, वहाँ पहले जो व्यक्ति काम करता था उसने भारत की अग्रणी विज्ञान पत्रिका, करंट साइन्स, का 5 अगस्त का अंक वहाँ छोड़ दिया था। सरसरी तौर पर उसके पन्ने पलटते हुए मेरी नज़र एम. गाडगिल और ए. महाबल के एक शोध पत्र 'कास्ट डिफरेंसिएशन इन दी पेपर वास्प *रोपालीडिया मार्जिनेटा* (*Ropalidia marginata*)' (पेपर वास्प *रोपालीडिया मार्जिनेटा* में जाति विभाजन) पर पड़ी। मैंने उस पर्चे को पढ़ा तो शायद इसीलिए कि प्रथम लेखक से मैं वाकिफ था। उस पर्चे को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि सेंट्रल कॉलेज के प्राणी विज्ञान विभाग की खिड़की पर जिन ततैया को मैं मुग्ध होकर निहारा करता था, वे आर. मार्जिनेटा ही थीं। गाडगिल उस समय संस्थान के सैद्धान्तिक अध्ययन केन्द्र में थे, और पिछले वर्ष इथॉलॉजिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया की बैठक के दौरान मेरी उनसे संक्षिप्त मुलाकात हुई थी। मैंने यह बताने के लिए उन्हें खोजा कि वे जिस पेपर वास्प का अध्ययन कर रहे हैं, मुझे लगता है कि मैं उनकी एक बड़ी आबादी को जानता हूँ। अगले रविवार सुबह हम उनके स्कूटर पर सेंट्रल कॉलेज गए और उन्होंने पुष्टि कर दी कि वे *आर. मार्जिनेटा* ही हैं मगर यह कहकर मुझे निराश भी कर दिया कि अब वे उनका

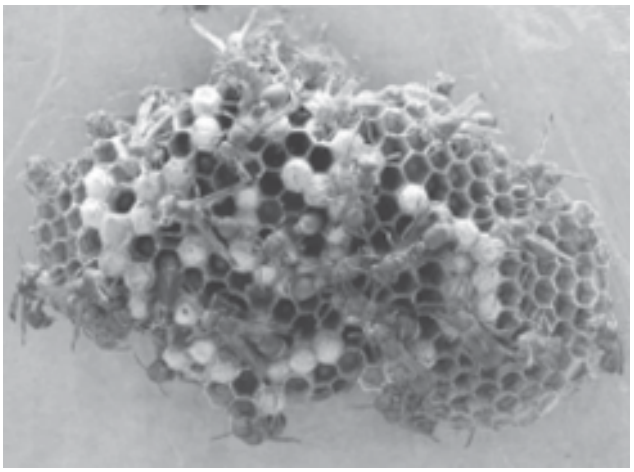

चित्र-1 *आर. मार्जिनेटा* का एक जाना-पहचाना, षटकोणीय कोशों से बना छत्ता; जिसमें कुछ वयस्क वास्प और प्यूपा मौजूद हैं। **फोटो:** टी. वर्गिस।

अध्ययन नहीं करते हैं। मगर साथ ही उन्होंने यह भी कहा, "यदि तुम्हारी रुचि हो, तो मैं इनका अध्ययन करने में तुम्हारी मदद कर सकता हूँ।" इस प्रकार से, मैंने *आर. मार्जिनेटा* (चित्र-1) का अध्ययन शुरू कर दिया। इसके लिए एक तो मैं सेंट्रल कॉलेज में उनकी बस्तियों का अवलोकन करता और कुछ बस्तियाँ सूक्ष्मजीव विज्ञान व औषधि विज्ञान प्रयोगशाला में भी विकसित कर लीं। ततैया अवलोकन का अधिकांश काम मुझे सप्ताहान्त पर करना पड़ता था मगर इसने मेरे सामने एक पूरी नई दुनिया खोल दी। अब मैंने अपने पठन-क्षेत्र में व्यवहारगत इकॉलॉजी, सामाजिक जीव विज्ञान, और वैकासिक जीव विज्ञान को भी शामिल कर लिया और डब्लू.डी. हैमिल्टन, ई.ओ. विल्सन, रिचर्ड डॉकिन्स, जॉन क्रेब्स, निक डेवीस, रॉबर्ट ट्राइवर्स, माधव गाडगिल वगैरह मेरे नायकों की सूची में जुड़ गए।

फैसले की घड़ी और सही फैसला

अपनी पीएच.डी. पूरी होने के बाद मुझे एक कठिन निर्णय लेना पड़ा। मैं आसानी से अपना शेष जीवन आण्विक जीव विज्ञान करते बिता सकता था। दरअसल, यह कल्पना करना असम्भव-सा था कि मैं अपनी प्रिय पेट्री प्लेट्स, पिपेट्स, पोषक-अगर और मुलायम-अगर, पोषक व न्यूनतम शोरबों को छोड़ पाऊँगा। मैं न सिर्फ आण्विक जीव विज्ञान की बौद्धिक चुनौतियों से मुग्ध था, बल्कि रोज़मर्रा के प्रायोगिक कार्यों का लती भी हो चुका था। फिर भी, *आर. मार्जिनेटा* पर पूर्णकालिक काम करने, कटिबन्धीय कीट समाजों के संगठन व जैव-विकास को समझने के उद्देश्य से उसके प्राकृतिक इतिहास पर एक सर्वथा नवीन शोध कार्यक्रम शुरू करने की सम्भावना भी उतनी ही मोहक थी। मैं जिस तरीके से निर्णय पर पहुँचा, वह बताता हूँ। यदि मुझे प्रायोगिक आण्विक जीव विज्ञान में कैरियर बनाना है, तो बेहतर होगा कि मैं यह काम यू.एस.ए. जैसी किसी जगह पर करूँ, जहाँ मुझे भारत के समान परिष्कृत प्रयोगशालाओं और आधुनिक टेक्नोलॉजी के अभाव का सामना नहीं करना पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि मैं जन्तु व्यवहार और वैकासिक जीव विज्ञान में कैरियर शुरू करना चाहता हूँ, तो यह काम मुझे निश्चित रूप से भारत में ही करना चाहिए, जहाँ मुझे कहीं ज़्यादा समृद्ध प्रकृति की प्रयोगशाला उपलब्ध होगी और मैं महंगे उपकरणों व टेक्नोलॉजी से अपेक्षाकृत मुक्त रहूँगा। चूँकि दोनों ही विकल्पों में मेरी रुचि लगभग बराबर-बराबर थी, इसलिए निर्णय यू.एस.ए. बनाम भारत निवास पर टिक गया।

मैं भारत की ओर झुकने लगा था, तभी मैंने महसूस किया कि विदेश में अनिवार्य माने जाने वाले पोस्ट-डॉक दौर को त्यागने के मेरे निर्णय के खिलाफ मेरे प्राध्यापकों और साथियों का ज़बर्दस्त दबाव बन रहा है, खास तौर से इसलिए कि मेरे पास मात्र एक

घरेलू पीएच.डी. उपाधि ही थी। मुझे बताया गया कि भारत में रुकना आत्मघाती होगा। खास तौर पर यदि मैं एक सर्वथा नए क्षेत्र में कदम रखना चाहता हूँ, तो विदेश में प्रशिक्षण और भी ज़रूरी है। फिर, मुझे कौन नौकरी देगा जबकि मेरे पास सिर्फ एक देशी पीएच.डी. है और विदेश से पोस्ट-डॉक प्रशिक्षण नहीं है? आज सोचूँ तो इस दबाव का शुक्रगुज़ार महसूस करता हूँ क्योंकि इसने मेरे निर्णय को और सख्त बना दिया था। मैं काफी आसानी से यू.एस. -आण्विक जीव विज्ञान वाला रास्ता अख्तियार कर लेता - एक तो इस विषय से मेरा लगाव था और वैसे भी मुझे यात्रा करना और नई-नई संस्कृतियों का अनुभव अच्छा लगता है। मगर यह नामुमकिन था कि इस धारणा को चुनौती न दी जाए कि आप विदेश में प्रशिक्षण के बगैर एक वैज्ञानिक के रूप में सफल नहीं हो सकते। मैंने यहीं रुकने का निर्णय लिया और आज तक मुझे पछताने का कोई कारण नहीं दिखा है। यह सही है कि मुझे बताया गया था कि यदि मैं विदेश में मात्र दो वर्ष पोस्ट-डॉक करके आया तो मुझे आई.आई.एससी. में सहायक प्राध्यापक का पद मिल जाएगा जबकि मुझे व्याख्याता बनने के लिए पाँच साल इन्तज़ार करना पड़ा था। मगर लम्बे दौर में इन बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं जो नवीन शोध कार्य शुरू कर सका और 30 सालों तक निर्बाध रूप से जारी रख सका, वह ऐसे छोटे-मोटे नुकसानों की भरपाई कर देता है। मैं शायद पद और वेतन के मामले में अपने समकक्षों से पिछड़ गया मगर मुझे लगता है कि अपने शोध कैरियर में मैंने उन सबको कहीं पीछे छोड़ दिया।

मैंने और मेरे छात्रों ने *आर. मार्जिनेटा* के बारे में एक के बाद एक कई रहस्योद्घाटन करते हुए खूब लुत्फ उठाया है। हमारे आस-पास मौजूद और हमारा ध्यान चाहने वाली तमाम अन्य दिलकश प्रजातियों के बरक्स *आर. मार्जिनेटा* के प्रति अपने पूर्वाग्रह से हम सख्ती से चिपके रहे हैं। जैसा कि मैंने वायदा किया था, अब मैं अपने शोध कार्य से तीन उदाहरण दूँगा और उसके बाद विज्ञान के कामकाज के बारे में कुछ विचार प्रस्तुत करूँगा। हमारी हर शोध परियोजना किसी-न-किसी सवाल से शुरू होती है और यहाँ मैंने ऐसे तमाम सवालों में से तीन को चुना है जो 'संदर्भ' के अगले दो अंकों तक जारी रहेंगे।

ततैया क्या करती हैं और क्यों?

अपने शौकिया दौर में मैंने *आर. मार्जिनेटा* के घोंसलों के व्यवहार के बहुत कम अवलोकन किए थे। मैंने अपना ध्यान मुख्य रूप से घोंसलों की इल्लियों व वयस्कों की जनसंख्या पर केन्द्रित किया था। मेरे लिए व्यवहार अध्ययन का झरोखा खोलने का काम मैरी जेन वेस्ट-एबरहार्ड ने किया था। अपनी भारत यात्रा के दौरान उन्होंने

मुझे बताया था कि हम रंगीन पेंट का छोटा-सा बिन्दु लगाकर ततैयों को चिन्हित कर सकते हैं। पहले बगैर चिन्हित किए ततैया के घोंसले का अवलोकन करना और फिर निजी पहचान के लिए उन्हें चिन्हित करके देखना, सचमुच आँख खोल देने वाला अनुभव होता है। जब वे अनाम होती हैं, तो सारी ततैया लगभग एक-सी लगती हैं, मगर जब आप उन पर अलग-अलग निशान लगा देते हैं, तो उनके निजी व्यक्तित्व उभरकर सामने आते हैं। आज भी ततैयों की निशानदेही हमारे अनुसंधान का पहला कदम होता है। और इसके लिए हम हमेशा टेस्टर्स एनेमल हॉबी पेंट का उपयोग करते हैं। ये पेंट विभिन्न रंगों में मिलते हैं और इन्हें बच्चों द्वारा इस्तेमाल के लिए पूरी सावधानी से बनाया जाता है; लिहाज़ा ये गैर-विषैले, गन्धहीन और जल्दी सूखने वाले होते हैं। यह शायद हमारे अनुसंधान की एकमात्र वस्तु है जिसे आयात करना पड़ता है। बदकिस्मती से, टेस्टर्स एनेमल पेंट आप कम्पनी से ऑर्डर नहीं कर सकते; इन्हें भारत नहीं भेजा जा सकता क्योंकि ज्वलनशील होने के कारण इन्हें हवाई जहाज़ में नहीं रखा जा सकता। पूर्व में ये पेंट मुझे खुद ही लेकर आना पड़ता था, और इसीलिए मैं यू.एस.ए. जाने का कोई अवसर नहीं चूकता था। आजकल मेरे कई भूतपूर्व छात्र समय-समय पर भारत आते रहते हैं और मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि मेरे लिए चॉकलेट की बजाय टेस्टर्स एनेमल पेंट लेते आएँ।

मेरे सामने पहली चुनौती यह थी कि ततैयों के अलग-अलग व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ प्रमाण प्रस्तुत करूँ ताकि वे लोग भी मेरे दावे को स्वीकार कर लें जो खुद ततैयों को नहीं देख रहे हों, और मात्र मेरा विवरण पढ़ रहे हों। सबसे पहले मैंने सहज अँग्रेज़ी में उन कामों की सूची बनाई जो ततैया करती हैं - बैठना, स्पर्शक (एंटीना) उठाकर बैठना, पंख उठाकर बैठना, चलना, कोठरियों का मुआयना करना, लार्वा को भोजन देना, घोंसले से अनुपस्थित रहना, भोजन लाना, लुगदी लाना, पानी लाना, किसी अन्य ततैया पर हमला करना, किसी अन्य ततैया का पीछा करना, वगैरह। सूची में करीब एक सौ अलग-अलग व्यवहार जुड़ गए। इस प्रक्रिया को व्यवहार का पृथक्करण (discretization of behaviour) कहते हैं। इसमें आप चाहें तो बहुत बारीक भेद कर सकते हैं और चाहें तो मोटा-मोटा पृथक्करण भी कर सकते हैं। कई घण्टों के अवलोकन से पता चला कि लगभग सारी ततैया कभी-न-कभी लगभग सारे काम करती हैं। तो मुझे उनके जो अलग-अलग व्यक्तित्व नज़र आए थे, उनका सम्बन्ध विभिन्न ततैयों द्वारा अलग-अलग गतिविधियाँ करने में नैसर्गिक रूप से आने वाला मात्रात्मक अन्तर होना चाहिए।

लिहाज़ा, मैंने जीन आल्टमैन की

पुस्तक का अध्ययन किया, जिसे जन्तु व्यवहार के समूहीकरण की बाइबल भी कहते हैं, और ततैयों द्वारा विभिन्न कार्यों में बिताए गए समय (अपेक्षाकृत लम्बी अवधि के कार्यों के लिए) या विभिन्न कार्यों को करने की दर (अपेक्षाकृत छोटी अवधि के कार्यों के लिए) को नापने के लिए कई विधियों का मानकीकरण कर लिया। ये मापन करते हुए मैंने जान-बूझकर इस तथ्य को अनदेखा कर दिया कि हरेक कॉलोनी में एक ततैया रानी होती है और शेष मज़दूर होते हैं। यदि रानी और मज़दूरों के बीच स्पष्ट व्यवहारगत अन्तर हैं, तो ये अन्तर आँकड़ों और विश्लेषण से उभरना चाहिए, मेरे द्वारा पहले ही थोपे नहीं जाने चाहिए। इससे बचने के लिए मैंने एक और सावधानी बरती थी। एक सौ कार्यों में से किन पर ध्यान केन्द्रित किया जाए? जीव विज्ञान की दृष्टि से कौन-सी गतिविधियाँ महत्वपूर्ण हैं? मैंने फैसला किया कि मैं ऐसा कोई निर्धारण नहीं करूँगा और खुद ततैयों को बताने दूँगा कि कौन-सी ततैया कॉलोनी के लिए महत्वपूर्ण है और उनके समाज के कामकाज को समझने के लिए कौन-सी गतिविधियाँ महत्वपूर्ण हैं।

एक तरह से मेरे लिए ये निर्णय करना आसान था क्योंकि मैं एक नए क्षेत्र में कदम रख रहा था और प्रशिक्षण के अभाव के चलते पूरी तरह अनभिज्ञ था। मगर, दूसरी ओर, मेरे लिए अपने शोध कार्य को प्रकाशित करना आसान नहीं था क्योंकि आम तौर पर रेफरी भोले-भाले शोधकर्ताओं की नई विधियों को निरुत्साहित करते हैं। मैंने रेफरियों को अनदेखा कर दिया और अपने फैसले पर अड़ा रहा - और जहाँ सम्भव हुआ, वहीं प्रकाशन करके खुश रहा। यह दर्शन पूरे शोध कैरियर में मेरा मददगार रहा है क्योंकि मैंने यह सीख लिया है कि रेफरियों से वही लूँ जो उपयोगी लगता है मगर जो सलाह मुझे खराब लगे उसे दृढ़तापूर्वक खारिज कर दूँ। और यकीन मानिए कई बार खराब सलाह मिलती है। और खराब सलाह को खारिज करना तभी सम्भव है जब आप एक अन्य खराब सलाह को कूड़ेदान के हवाले कर दें जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दी जाती है - कि आप क्या प्रकाशित करते हैं की बनिस्बत ज़्यादा महत्व इस बात का है कि आप कहाँ प्रकाशित करते हैं।

तो आप ततैया को खुद अपनी बात कहने के लिए कैसे प्रेरित करेंगे? मैंने कई कॉलोनियों के सारे सदस्यों द्वारा विभिन्न कार्यों में व्यतीत समय का मापन किया और एक औसत ततैया के लिए समय-गतिविधि बजट की गणना की। इस औसत समय-गतिविधि बजट के आधार पर मैंने विभिन्न गतिविधियों को उन पर व्यतीत समय के घटते क्रम में व्यवस्थित कर लिया। मेरे लिए यह हैरत की बात थी कि एक औसत ततैया अपना 95 प्रतिशत से ज़्यादा समय सौ में से मात्र 6 गतिविधियों में व्यतीत करती है। मैंने

अपने विश्लेषण के पहले चरण के लिए इन 6 'सर्वोच्च' कार्यों को चुन लिया। यदि ततैया किन्हीं कामों पर ज़्यादा समय लगा रही हैं तो ये काम उनके लिए महत्वपूर्ण होंगे। महत्व का ऐसा पैमाना मेरे विश्लेषण के लिए कार्य (व्यवहार) चुनने का एक अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ तरीका था - एक तरह से खुद ततैया से बुलवाने का एक तरीका था यह। मगर यह ज़रूर बताना चाहूँगा कि 6 सर्वोच्च गतिविधियों की सूची बहुत उत्साहवर्धक नहीं थी। जिन 6 गतिविधियों को सर्वोच्च स्थान मिला, वे थीं - बैठकर खुद को सँवारना, एंटीना उठाकर बैठना, पंख उठाकर बैठना, चलना, कोठरियों का मुआयना करना, और घोंसले से अनुपस्थित रहना।

यह काफी बेतुका लगा कि ये 6 गतिविधियाँ, जिनका प्रत्यक्षतः कोई जैविक या सामाजिक महत्व नहीं था, हमें ततैया की कॉलोनी के सामाजिक संगठन के बारे में कुछ अहम बात बताएँगी। यह बात कई लोगों ने कही। मैं शायद आज स्वीकार न करूँ मगर बात इसलिए और भी ज़्यादा बेतुकी लग रही थी कि इससे पहले किसी ने ऐसा कुछ किया नहीं था। बहरहाल,

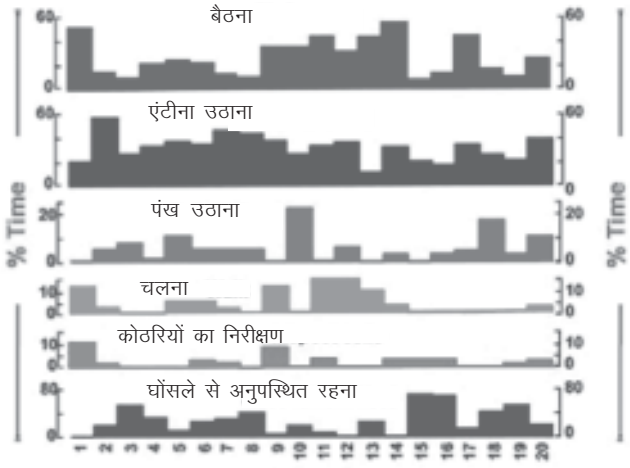

चित्र-2 *आर. मार्जिनेटा* की दो कॉलोनियों में विशेषतौर पर चिन्हित की गईं 20 ततैया के समय-गतिविधि बजट को यहाँ ग्राफ की मदद से दर्शाया गया है। सभी ततैया यहाँ दर्शाई गईं छह व्यवहारगत गतिविधियों में अपना 85-100 प्रतिशत समय (औसत + स्टेंडर्ड डेवीएशन = 95.9 + 0.4) बिताती हैं। यहां इस बात का भी ध्यान रखिए कि ततैया द्वारा इन छह कार्यों के लिए दिए गए समय में काफी विविधता होती है।

मैंने इस 'वस्तुनिष्ठ' तरीके को छोड़ने के मोह व परामर्श को हावी नहीं होने दिया। मैंने इन 6 गतिविधियों के सन्दर्भ में कॉलोनी के सारे सदस्यों के समय-गतिविधि बजट के आँकड़ों का उपयोग करते हुए यह विश्लेषण किया कि इनमें किस तरह के व्यक्तिगत पैटर्न हैं। जन्तु x गतिविधि मेट्रिक्स को देखने से पता चलता है कि यह तो सही है कि सारे सदस्य अपना 95 प्रतिशत समय उन्हीं 6 गतिविधियों में व्यतीत करते हैं मगर जिस ढंग से वे अपना समय इन 6 गतिविधियों को आवण्टित करते हैं, उसमें बहुत विविधता है। इससे मेरी इस शंका की पुष्टि होती है कि ततैयों के बीच अन्तर गुणात्मक न होकर मात्रात्मक है और वास्तव में, हरेक ततैया का एक अलग व्यक्तित्व है (चित्र-2)।

निश्चित रूप से, एक कॉलोनी में विभिन्न ततैयों के समय-बजट में मात्रात्मक विविधता है, मगर क्या यह महज़ बेतरतीब शोरगुल है या क्या इस विविधता में जीव विज्ञान के लिहाज़ से कोई अर्थपूर्ण पैटर्न है? जन्तु x गतिविधि के इस आंकिक मेट्रिक्स में किसी पैटर्न को पहचानने के लिए *मल्टीवेरिएट* विश्लेषण की ज़रूरत ज़ाहिर थी। मैंने हमेशा देखा है कि अपने विषय से इतर पढ़ना और सर्वथा भिन्न विषयों का अध्ययन करने वाले मित्रों से बातचीत करना मददगार होता है। वे आपको अपने विषय को एक नई रोशनी में देखने को विवश करते हैं और इस ढंग से देखने को प्रेरित करते हैं जो शायद आप या आपके विषय के अन्य लोग नज़रअन्दाज़ कर दें। इस प्रकरण में, मैंने सुलोचना

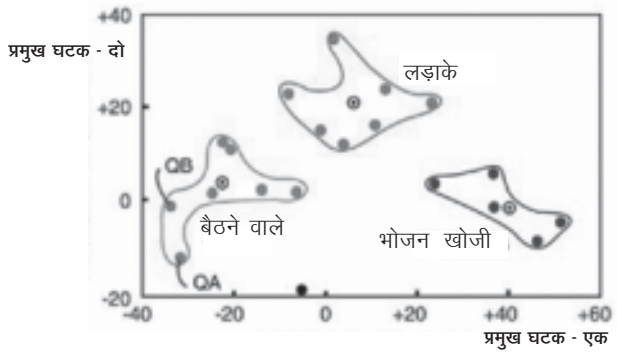

चित्र-3 ततैया की किसी भी कॉलोनी को उनके व्यवहारगत संकुलों में आसानी से बाँटा जा सकता है। यहाँ 20 *आर. मार्जिनेटा* के बैठने, भोजन की खोज और लड़ाई, इन तीन पृथक व्यवहारगत संकुलों को बिन्दुओं और उनको घेरते वक्रों के द्वारा दिखाया गया है।

और

गाडगिल और निरंजन जोशी से मित्रता बनाई। ये लोग प्रिंसिपल कम्पोनेंट एनालिसिस के लिए एक कंप्यूटर प्रोग्राम विकसित कर रहे थे ताकि भारत में वर्षा में मात्रात्मक विविधता के आधार पर कुछ पैटर्न देख सकें और आँकड़ों का मौसम-वैज्ञानिक अर्थ निकाल सकें। मैंने उनकी विधि का उपयोग किया और आश्चर्यजनक रूप से यह पाया कि किसी भी कॉलोनी में ततैयों को तीन व्यवहारगत समूहों में बाँटा जा सकता है (चित्र-3)। पैटर्न सुन्दर तो ज़रूर था मगर क्या जीव विज्ञान की दृष्टि से इसका कोई महत्व था? शुरुआत में मुझे समझ नहीं आया। कंप्यूटर द्वारा प्रदत्त समूहीकरण को स्वीकार करके मैंने एक बार फिर मूल आँकड़ों को देखा और प्रिंसिपल कम्पोनेंट एनालिसिस द्वारा पहचाने गए तीन समूहों की व्यवहारगत तस्वीर की छानबीन की।

इस छानबीन का नतीजा तो समूहों की पहचान से भी ज़्यादा दिलचस्प रहा। एक समूह की ततैया अपना काफी सारा समय (अन्य समूहों से ज़्यादा समय) महज़ बैठने और खुद को सँवारने में व्यतीत करती हैं। यानी देखा जाए तो कुछ भी 'महत्वपूर्ण' न करते हुए बिताती हैं। मैंने बेझिझक इन्हें निठल्ला नाम दे दिया। एक अन्य समूह की ततैया की पहचान घोंसले से बाहर समय व्यतीत करने में थी। चूँकि ततैया आम तौर पर भोजन की तलाश में घोंसले से बाहर जाती हैं, इसलिए मैंने इन्हें नाम दिया भोजन-खोजी। तीसरे समूह की ततैया अपने स्पर्शक उठाकर बैठे रहना पसन्द करती थीं और मुझे समझ न आया कि इन्हें क्या नाम दूँ। इसके बाद मैंने समय-बजट से आगे बढ़कर आँकड़ों का विश्लेषण किया। जैसे, अपेक्षाकृत बिरली व कम समय वाली गतिविधियों की

आवृत्ति। यह समझ में आया कि ये वाली ततैया आम तौर पर कॉलोनी के अन्य सदस्यों के खिलाफ काफी ज़्यादा बार आक्रामक कृत्यों को अंजाम देती हैं। मैं यह तो पहले ही देख चुका था कि एंटीना उठाकर बैठने वाली ततैया ज़्यादा चौकन्नी होती हैं और कॉलोनी के अन्दर या बाहर से होने वाली किसी भी गड़बड़ी का जवाब तुरन्त देने में सक्षम होती हैं। चौकन्नेपन व आक्रामकता के गुणों को एक साथ रखकर देखा जाए, तो इस समूह के लिए लड़ाका नाम मुनासिब लगता है। एडवांस्ड कीट समाजों में जो मज़दूर अलग-अलग काम करने के लिए शारीरिक रूप से विशेषीकृत हो जाते हैं, उन्हें जातियाँ कहा जाता है। लिहाज़ा मैंने *आर. मार्जिनेटा* के निठल्लों, लड़ाकों और भोजन-खोजियों के लिए व्यवहारगत जाति नाम का प्रस्ताव रखा। यह तो तर्कसंगत लगता है कि किसी भी कॉलोनी में भोजन-खोजी जाति होगी ताकि भोजन व रेशों (घोंसला बनाने के लिए) की ज़रूरत की पूर्ति हो सके। शायद लड़ाका जाति भी ज़रूरी होगी ताकि आन्तरिक व बाह्य उपद्रवों से निपटा जा सके। यानी ये एक तरह से पुलिस व फौज का मिला-जुला रूप हैं। निठल्ला जाति की भूमिका स्पष्ट नहीं थी। हो सकता है ये आरक्षित रहती हैं, ऐसे शिशु जिनका अभी विभेदन नहीं हुआ है। या इनका कुछ और महत्व भी हो सकता है। खैर, यह तो जो भी हो, मगर अभी एक बड़ा विरोधाभास मेरी बाट जोह रहा था।

रानी एक विशिष्ट हैसियत रखती है, इस तथ्य को जान-बूझकर पहले से मानकर न चलने का कारण यह था कि इस तरह से हम व्यवहार-आधारित विभेदीकरण के इस तंत्र में रानी की भूमिका की छानबीन कर सकते हैं। आदिम सामाजिक प्रजातियों में रानी से अपेक्षा होती है कि वह अपनी कॉलोनी में सबसे ज़्यादा सक्रिय, अन्तर्क्रियाशील व आक्रामक होगी क्योंकि यह जानी-मानी बात है कि वे शारीरिक आक्रामकता व अत्याचार का सहारा लेती हैं ताकि मज़दूरों में प्रजनन को रोक सकें और उन्हें कॉलोनी के लिए काम करने को मजबूर कर सकें। *आर. मार्जिनेटा* को आदिम सामाजिक प्रजाति के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है क्योंकि इनमें रानी व मज़दूरों के बीच शारीरिक भेद नहीं होता और इनकी कॉलोनी छोटी-छोटी होती हैं। अतः मेरी अपेक्षा थी कि रानी लड़ाका जाति की होगी। इस उम्मीद के विपरीत, अध्ययन की गई लगभग सारी कॉलोनियों में रानी निठल्ला जाति की थी। तो सवाल यह था कि अव्वल तो इन निठल्ली रानियों को रानी के रूप में स्वीकार ही कैसे किया गया था? और शारीरिक आक्रामकता का उपयोग किए बगैर ये मज़दूरों के प्रजनन का दमन कैसे करती हैं? कैसे किसी ततैया के जीवन में व्यवहारगत जातिगत अन्तर पैदा होता है (यानी

कैसे एक साधारण ततैया रानी बन जाती है)? कॉलोनी में निठल्लों, लड़ाकों और भोजन-खोजियों का सही अनुपात कैसे हासिल किया जाता है? ऐसा कैसे हुआ कि *आर. मार्जिनेटा* में इस तरह का व्यवहार-आधारित जाति विभाजन विकसित हो गया जबकि अन्य आदिम सामाजिक प्रजातियों में ऐसा नहीं हुआ है?

ऐसे दर्ज़नों सवाल, जिनका पहले वजूद तक नहीं था, ने हमें दशकों से व्यस्त रखा हुआ है और इनका जवाब देते हुए कीट समाजों के संगठन व विकास की समझ गहरी हुई है। हाल ही मैंने यू.एस.ए. की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी में विदेशी एसोसिएट चुने जाने के अवसर पर आमंत्रित प्रथम आलेख में इन सवालों और अब तक मिले जवाबों का सार प्रस्तुत किया है। मेरा इरादा यहाँ उसके विस्तार में जाने का नहीं है। अब मैं अगले उदाहरण की ओर बढ़ता हूँ।

(अगले अंक में जारी)

राघवेन्द्र गडगकर: सेंटर फॉर इकोलॉजिकल साइंसेज़, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलोर में प्रोफेसर हैं और विज्ञान का इतिहास, इंडियन नेशनल साइंस अकादमी में अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष हैं। 1993 में जीव विज्ञान का शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार, मिला था।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह आलेख कोलकाता में फरवरी 2010 में आयोजित 'युवा खोजी सम्मेलन' तथा अगस्त 2010 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कीट अध्ययन संघ के सोलहवें सम्मेलन, कोपनहेगन में दिए गए व्याख्यान पर आधारित है।

मूल लेख 'करेंट साइंस' पत्रिका के अंक-6, 25 मार्च 2011, खण्ड 100 में प्रकाशित हुआ था।